बिहार विधानसभा चुनाव-2015

मंडल के लोगों ने फोड़ दिया कमंडल

संपादक : एच.एल. दुसाध

सह-संपादक : डॉ. कौलेश्वर - डॉ.कविश कुमार

बिहार विधानसभा चुनाव-2015

मंडल के लोगों ने फोड़ दिया कमंडल

सम्पादक

एच.एल. दुसाध

सह-सम्पादक

डॉ. कौलेश्वर-डॉ. कविश कुमार

दुसाध प्रकाशन

लखनऊ

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN : 978-81-87618-65-2

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के लिए
द्वारा
प्रकाशक : **दुसाध प्रकाशन**
डाइवर्सिटी हाउस, 2/1467
आदिल नगर, कल्याणपुर, लखनऊ-226022
E-mail : hl.dusadh@gmail.com
मो. : 9654816191

प्रशासनिक कार्यालय
एफ-196, आया नगर एक्स, फेज-6, नई दिल्ली-110047,

© **संपादक**

मूल्य : 150.00 रुपये

रचना	:	**मंडल के लोगों ने फोड़ दिया कमंडल**
संपादक	:	एच.एल. दुसाध
आवरण	:	राकेश यादव
शब्दांकन	:	कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पित

एक सफल गृहणी से दुर्लभ मुख्यमंत्री
के रूप में उत्तीर्ण
राबड़ी देवी जी को

अनुक्रम

प्रस्तावना 9

सम्पादकीय 29

अध्याय-1

विधानसभा चुनाव-2015 का पूर्वाभ्यास

ध्वस्त हो गयी मोदी की सोशल इंजीनियरिंग—*एच.एल. दुसाध* 41

उपचुनावों से उपजी समस्या का फौरी इलाज—*एच.एल. दुसाध* 44

जनता परिवार

एक होगा जनता परिवार! 49

एक होकर क्या कर लेगा जनता परिवार!—*एच. एल. दुसाध* 50

कमंडल की काट के लिए अब कब होगा मंडल का इस्तेमाल!—*एच. एल. दुसाध* 51

कुनबा जोड़ने की कवायद 53

नई दुकान, पुराना पकवान—*बलवीर पुंज* 54

सेल्फी युग में कितना टिकेगा जनता परिवार—*पुण्य प्रसून वाजपेयी* 57

भंवर में जनता परिवार का विलय 59

विचार विहीनता वाला विलय—*हृदय नारायण दीक्षित* 60

आपसी रार से बच पाएगा परिवार!—*रणविजय सिंह* 63

मंडल के लोगों उठो, वोट से कमंडल फोड़ दो : लालू 65

अध्याय-2

बिहार में चुनावी जंग

लालू फिर अपने स्टाइल में	69
राजनीतिक दलों के समक्ष बहुजन डाइवर्सिटी मिशन की अपील!	71
चुनावी समर के बीच नारा युद्ध : तुकबंदी नारों से जनता का रिझाने की कोशिश	78
छोटे दलों के हैं अरमान बड़े—*ब्रजेश कुमार*	79
देश की फिरंगी है भाजपा : लालू	80
मतदाताओं को छल रहे बीजेपी नेता : लालू	81
आरक्षण के मुद्दे पर डर से बीफ को मुद्दा बना रही भाजपा : लालू	82
गोमांस पर लालू को घेरने की संघी चाल—*एच.एल. दुसाध*	83
भागवत बोलें या लालू, बहस तो आगे बढ़ेगी—*प्रमोद जोशी*	84
महागठबंधन को थमाई 'भागवत' पोथी आरएसएस—*प्रेम कुमार मणि*	87
तो क्या बिहार है संघ की नई प्रयोगभूमि!—*चंदन*	90
आखिर क्या मंशा है संघ प्रमुख की?—*उपेन्द्र प्रसाद*	93
नेताजी नीतीश को पटकना क्यों चाहते हैं?—*अमलेंदु उपाध्याय*	95
हिंदुत्व : कोई हाशिया, न कोई मुख्यधारा!—*राजेंद्र शर्मा*	98
भागीदारी नहीं, भीखनुमा वादों के सहारे वोट खरीदेगी भाजपा!—*एच.एल. दुसाध*	101
कैसे मिले संघ के आरक्षण विरोधी षडयंत्र से निजात—*एच.एल. दुसाध*	102
यह जाति बनाम धार्मिक चेतना के राजनीतिकरण का युद्ध है—*एच.एल. दुसाध*	107
हैट्स ऑफ टू मांझी साहब! हम का बेहतरीन घोषणापत्र—*एच.एल. दुसाध*	108
कांशीराम बनाम हेडगेवारवाद की जंग में तब्दील होता बिहार चुनाव—एच.एल. दुसाध	110
मोदी : विविधता के सबसे बड़े दुश्मन—*एच.एल. दुसाध*	114
मोदी और विविधता—*एच.एल. दुसाध*	115
मोदीवादी विकास से सावधान—*एच. एल. दुसाध*	118

अध्याय-3

बिहार का जनादेश

महागठबंधन की महाजीत

बनारस से मोदी के खिलाफ शुरु करेंगे आन्दोलन : लालू	125
रविवार तय करेगा बिहार की बागडोर	126
3000 करोड़ का चुनाव	127
पोस्टल बैलेट ने बना दिया रिकार्ड	132
अब दिल्ली पर चढ़ाई राजद प्रमुख लालू प्रसाद से बातचीत के प्रमुख अंश	133
नीतीश-लालू के विजय जुलूस में राहुल जिंदाबाद	134
जनादेश का असर	135
38 पर नोटा का तीसरा स्थान—*रमण शुक्ल*	138
राजनीतिक दलों की जीत में जाति का गणित	139
महागठबंधन की महाजीत	141
चित्त हुए दलित राजनीति के दो बड़े चैंपियन	142
बिहार चुनाव : उपस्थिति दर्ज नहीं कर सकीं सपा-बसपा—*कलानिधि मिश्र*	143
...तो मुलायम होते जीत के हीरो	145
असद्दुदीन ओवैसी और पप्पू यादव ने कराई अपनी किरकिरी	146
पुरानी हनक में लौटे राजद प्रमुख	148
भाजपा के समर्थक भी आगे आएं : लालू	149
'बनरसे में लालू दगीहन राकेट आउर फोड़िहें बम'—*विकास पाठक*	149
लालू साबित हुए सबसे बड़े लड़ैया	151

अध्याय-3 ए

जनादेश पर बुद्धिजीवियों की राय

नहीं हिली सामाजिक न्याय की जमीन—*प्रशांत मिश्र*	154
शासन के लिए नीतीश कुमार सामाजिक न्याय के लिए लालू—*उर्मिलेश*	156

जातीय समीकरणों की जीत—*डॉ. एलएन शर्मा* 158

अस्मिता की लड़ाई के बीच बिहार का चुनाव—*संजय कुमार* 161

महामंडल की शानदार जीत—*प्रेम कुमार मणि* 163

परिपक्व लालू का राजनीति में हस्तक्षेप 166

ध्रुवीकरण की राजनीति अब न चलेगी—*नीरजा चौधरी* 168

बिहार चुनाव परिणाम—*प्रभाकर चौबे* 171

बिहार के पार भी हो प्रयोग वैसे—*अरविन्द मोहन* 174

अध्याय-4

नीतीश की नई पारी

नीतीश सीएम, तेजस्वी डिप्टी 181

बिहार के मुख्यमंत्री 184

नीतीश मंत्रिमंडल में लालू की रणनीति—*एसए शाद* 185

लालू की बेटियों के लिए खास थी यह खुशी—*राजीव रंजन* 186

तेजस्वी बिहार—*ललित सुरजन* 187

बिहार सुधार की जिम्मेदारी—*प्रेम कुमार मणि* 190

प्रस्तावना

बिहार एक खबर है

लोकतंत्र में कोई भी चुनाव रोचक होता है चाहे पंचायत, नगर निकाय, विधानसभा या लोकसभा का हो। जहाँ कहीं भी, किसी राज्य में चुनाव होता है तो वहाँ के लोगों में समाजिक द्वंद्व और राजनीतिक विचार को लेकर गंभीर जमीनी बहस लाजिमी है क्योंकि यह जनसंवाद लोकतंत्र को बौद्धिक-वैचारिक-नैतिक तौर से मजबूत बनाने में सहयोग करता है। बिहार विधानसभा का चुनाव हमेशा से देश-दुनिया के लोगों और मीडिया के लिये बड़ी दिलचस्पी के कारण सुर्खियाँ बटोरता रहा हैं। यूँ मीडिया बिहार के चुनाव को एक खास अदभुत तरीके से परोसती रही है, मानो कि जो इस राज्य में होता है वह देश के किसी भी कोने में नहीं होता है। लेकिन इस देश की जमीन को, आवाम को समझने-बूझने-जानने वाले किसी भी शख्स के लिये बिहार का चुनाव एक आइना है जिसमें हम सभी पूरे देश के राजनीतिक विमर्श को बखूबी देख सकते हैं, महसूस कर सकते हैं। बिहार में राजनीतिक बदलाव के कई कालखंड रहे हैं जिन्हें कई चरणों में बाँट सकते हैं। आजादी के बाद हुये पहले चुनाव 1952 के बाद 1967, 1977, 1980, 1990, 2005 और 2015 का वर्ष बिहार की राजनीति के टर्निंग प्वाइंट रहे, जो सत्ता परिवर्तन के लिहाज से खास तो रहे ही भारतीय लोकतंत्र के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक-वैचारिक बदलाव के लिये भी ये महत्वपूर्ण वर्ष हैं। अब इसी पृष्ठभूमि के साथ मैं 2015 के बिहार विधानसभा चुनाव पर आधारित इस किताब के प्रस्तावना की शुरूआत करूँगा जिसकी जिम्मेदारी मुझ पर 'बहुजन डायवर्सिटी मिशन' के संस्थापक और क्रांतिकारी बहुजन लेखक-चिंतक-विचारक आदरणीय एच. एल. दुसाध जी ने सौंपी है। इस प्रस्तावना के माध्यम से बिहार की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि के आलोक में 1990 के बाद की राजनीति में लालू प्रसाद यादव का उभार, फिर नीतीश-बीजेपी गठजोड़ का शासन और 2015 के बिहार के विधानसभा चुनाव की तमाम बातों को एक सूत्र में पिरोकर ही इस पुस्तक 'मंडल ने फोड़ दिया कमंडल' की प्रासंगिकता सिद्ध की जा सकती है। लेकिन इन सबके केन्द्र में मुख्यरूप से बिहार

की समाज-राजनीति और खासतौर से लालू यादव होंगे, जिनके इर्द-गिर्द 1990 से 2015 का बिहार घूमता रहा है। इसी बड़े परिप्रेक्ष्य में 2015 के बिहार चुनाव को विश्लेषित करने की मेरी कोशिश होगी और उम्मीद ही नहीं विश्वास करता हूँ कि प्रस्तावना में मैं पुस्तक के साथ समुचित न्याय कर पाऊँगा। अपने लिखे गये वैचारिक पक्ष के लिये पूरी जिम्मेदारी लूँगा पर किसी भी मानवीय या तकनीकी भूल-चुक के लिये पहले ही माफी माँगता हूँ।

बिहार का सामाजिक-राजनीतिक द्वंद्व

बिहार का समाज एक सामंती, जड़वादी जातिवादी समाज रहा है जहाँ की अर्थव्यवस्था भूमि आधारित रही है। ऐतिहासिक संदर्भ में कमोबेश यही सच्चाई पूरे भारतवर्ष के समाज की भी है। अब एक ऐसे राज्य में जहाँ भूमि सुधार व्यवस्थित तरीके से लागू नहीं हुआ हो तो समाज और अर्थव्यवस्था का द्वंद्व मिलकर हिंसा की बुनियाद स्थापित करने के लिये काफी हैं। कोशिश तो हुई लेकिन जमींदारी उन्मूलन एवं भूदान जैसे आन्दोलन के दौर में भी सवर्ण सामंती भूपति जातियों ने फर्जी भूमि वितरण करके परोक्ष तौर से आर्थिक सत्ता पर कब्जा रखा और माथे पर प्रगतिशील होने का सर्टिफिकेट भी चस्पा कर लिया, लिहाजा बहुजनों के लिये मामला वही ढाक के तीन पात रह गया। 1950 से 1980 के दशक तक कांग्रेस, समाजवादी और वामपंथ का भी खासा प्रभाव बिहार के समाज और राजनीति पर रहा परन्तु इस दौर में विधानसभा में प्रतिनिधित्व के लिहाज से दबदबा सवर्ण जातियों का ही रहा। समाजवादी दलों को छोड़ दें तो कांग्रेस और वामपंथी दोनों दलों का सांगठनिक ढांचा उपर से नीचे तक उच्च जाति केन्द्रित ही रहा जो अब तक बरकरार है। वैसे बहुजन समाज-दलित, आदिवासी, पिछड़ा, पसमांदा-वोटबैंक के तौर पर कांग्रेस और वाम के लिए खाद के तौर पर उपयोग होता रहा लेकिन समाजवादी राजनीति की बदौलत दलित-पिछड़ावाद भी बीच-बीच में अलग वजूद के लिये उफान मारकर अम्बेडकर-लोहिया की वैचारिक जमीन पर खड़ा होने की कोशिश में लगा रहा।

1990 के बाद जो मुद्दे विमर्श में आये उसने न सिर्फ बिहार बल्कि देश की राजनीतिक धारा बदल कर रख दी। मंडल कमीशन, राम मंदिर, सूचना क्रांति, शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिकी वर्चस्व के कारण विदेश नीति-आर्थिक नीति पर प्रभाव और वैश्विक उदारीकरण के कारण कृषि एवं आर्थिक नीति में बड़े बदलावों ने भारत के समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था सभी को बदल कर रख दिया। भारत में हो रहे बदलाव को बिहार ने बड़ी संजीदगी से महसूस किया। जब दुनिया भर में वैश्विक उदारीकरण के बाद आर्थिक ताकत के बूते सत्ता तंत्र और उसके प्रभावकारी स्रोतों पर प्रभाव डालने की नई कवायद हो रही थी जिसके आगे भारत नतमस्तक था तो बिहार-उत्तर प्रदेश में सामाजिक ताकत के बूते सत्ता तंत्र और उसके प्रभावकारी

स्रोतों में भागीदारी के प्रयास को लेकर एक नये दौर की शुरूआत हो रही थी। 1990 के दशक में जो दो क्रांतिकारी नायक उभरे जिन्होंने मनुवादी-ब्राह्मणवादी जमीन की धरातल पर दरार डाला और व्यवस्था में दबाब का केन्द्र पैदा कर बिहार-उत्तर प्रदेश की राजनीति में बहुजनों के लिये खास जगह बनाई। 1970 और 1980 के दशक में ये दोनों बहुजन नायक खुद को गढ़ते हुये दो भिन्न रास्तों पर चलकर सत्ता और समाज परिवर्तन की बुनियाद स्थापित करने में लगे थे। फिर 1990 के बाद से आजतक जो कुछ भी बिहार-उत्तर प्रदेश की राजनीति में हो रहा है और देश की राजनीति के विमर्श में है, उसमें तमाम सवाल-विवाद-आलोचनाओं के बावजूद इन दोनों महान शख्सियतों-मान्यवर कांशीराम जी और श्री लालू प्रसाद यादव का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव और महत्ती भूमिका दिखती है।

इतिहास के आईने में देखें तो महात्मा ज्योतिबा राव फुले, क्षत्रपति शाहूजी महाराज, नारायण गुरू, रामास्वामी नायकर पेरियार जैसे अनेक लोगों ने सामाजिक न्याय और भागीदारी के सवाल को विचारधारा की बुनियाद पर स्थापित किया। आजादी के बाद सर्वप्रथम डॉ. भीम राव अम्बेडकर और उसके बाद डॉ. राम मनोहर लोहिया ने आज की बहुजनवादी-समाजवादी राजनीति को प्रयोगधर्मी बनाया। वैसे 1990 के बाद की राजनीति पर मंडल कमीशन और राम मंदिर आन्दोलन-बाबरी मस्जिद विध्वंस की बड़ी प्रभावकारी भूमिका है। लालू यादव से पहले बिहार की राजनीति में कर्पूरी ठाकुर का मुख्यमंत्री बनना और जन-नायक के तौर पर स्थापित होना भी एक बड़ी घटना थी जिसके बाद उभरे सामाजिक द्वंद्व का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तब समूचे बिहार की सवर्ण-सामंती गलियों और चौराहे पर खुल्लम-खुल्ला दो अश्लील जातिवादी नारे लगाये जा रहे थे जिसकी चर्चा तात्कालीन मीडिया नें पक्षपातपूर्ण ब्राह्मणवादी मानसिकता के तहत कभी नहीं की। पहला नारा था—'कर्पूरी कर पूरा! छोड़ गद्दी धर उस्तूरा!!' और दूसरा नारा था—'पिछड़ा आरक्षण कहाँ से आई! कर्पूरी की माई बिआई!!' समझा जा सकता है कि एक छोटी जाति के शख्स का मुख्यमंत्री की कुर्सी पर काबिज होना कितना चुनौतीपूर्ण काम होता है। लेकिन 1990 के बाद ये दबाव का केन्द्र और वक्त कितना बदल गया था कि उत्तर प्रदेश में कांशीराम जी के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी के उभार के दौर में 'तिलक, तराजू और तलवार! इनको मारो जूते चार!!' का नारा मशहूर हुआ तो बिहार में लालू प्रसाद के दौर में 'भूरा बाल-साफ करो!' का नारा खूब प्रचारित हुआ। दिलचस्प ये है कि मंडल कमीशन लागू हुआ उस वक्त एक अग्रणी राष्ट्रीय अखबार ने 'भूराबाल साफ करो' का नारा प्रचारित कर दिया। खबर के अनुसार लालू यादव ने इस नारे को बुलंद किया था जबकि हकीकत में लालू ने अपनी जबानी किसी मंच से इस नारे को नहीं कहा था। लेकिन जब दो पार्टी नेताओं ने कोर्ट से अवमानना का नोटिस दिया तो अखबार ने माफी माँग ली। बात आई गई खत्म हो गई लेकिन तबतक नारा लालू

यादव के हवाले से देशभर में बुलंद हो चुका था और असर ये कि आजतक इस नारे की दुहाई दी जाती है।

सवर्ण मानसिकता से नारों को प्रचारित कर जन भावना भड़काने में मीडिया की भूमिका के संदर्भ में यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि 70 के दशक में जब कर्पूरी ठाकुर के खिलाफ सवर्ण गलियों में नारे गूँज रहे थे और कर्पूरी ठाकुर को कपटी ठाकुर कहा जा रहा था तब यही मीडिया अपने सामाजिक पूर्वाग्रह-पृष्ठभूमि के कारण कर्पूरी विरोधियों के साथ सहानुभूति जताने में मशगूल थी। ये उदाहरण इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं कि बिहार में पिछले दिनों कई घटनायें घटी हैं जिसपर मीडिया की मनुवादी-ब्राह्मणवादी मानसिकता जगजाहिर हुई। अगर फारबिसगंज हत्याकांड, बगहा गोलीकांड, औरंगाबाद का छोटू कुशवाहा हत्याकांड, ब्रह्मेश्वर हत्याकांड और उसके बाद आरा से पटना तक सार्वजनिक उत्पात, बाथे-बथानी टोला कोर्ट फैसला, शिरोमणि टोला कांड, नवादा में दलितों का गाँव जलाना या फिर इस तरह की किसी भी अन्य घटनाओं में अखबार या टेलीविजन चैनल की रिपोर्टिंग का तुलनात्मक अध्ययन करें तो मीडिया की पक्षपातपूर्ण भूमिका का सहज ही अंदाजा लगाया सकता है।

बिहार की राजनीति में लोहिया का प्रभाव

बिहार की राजनीति में लोहिया का सामाजिक प्रभाव जयप्रकाश नारायण से कहीं ज्यादा है। जयप्रकाश ने लोकतंत्र के सवाल पर जो आंदोलन किया उसने तात्कालीन इंदिरा सरकार की चूलें जरूर हिला कर रख दी थी। लेकिन लोहिया की प्रासंगिकता इसमें थी कि उन्होंने भारत के जातिवादी समाज की जड़ता और द्वंद्व पर सीधा प्रहार किया। यह लोहियावादी विचारधारा का तेवर ही था जिसने 1952 में पहले आमचुनाव के महज 15 साल बाद 1967 में ही कांग्रेस विरोधी संविद सरकार की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। समाजवादी आन्दोलन की बयार के बीच मझधार में ही जेपी ने लोहिया के साथ सैद्धान्तिक मतभेद होने पर साथ छोड़ दिया तब बिहार में जगदेव बाबू ने ही लोहिया का साथ दिया था। लोहिया को छोड़ने के बाद जेपी मुख्यधारा की राजनीति से हटकर विनोबा भावे द्वारा संचालित भूदान आन्दोलन में शामिल हो गए। जगदेव बाबू तो जेपी को नाखून कटाकर शहीद कहलाने वाला क्रांतिकारी कहते थे और सवर्ण जातियों के समाजवादियों का हित-साधक मानते रहे। वहीं कर्पूरी ठाकुर मानते थे कि भूदान आन्दोलन सामंती जातियों के लिये मुखौटा है। भूदान आंदोलन को लेकर हो रही सामाजिक-राजनीतिक गोलबंदी का एहसास करने के बाद उसकी असफलता को पहले ही भाँपकर कर्पूरी ठाकुर ने विनोबा भावे की खुलकर आलोचना की और 'हवाई महात्मा' तक घोषित कर दिया था। लोहिया ने 'पिछड़ा पावे सौ में साठ' का मशहूर नारा दिया जिनके सिद्धांत पर चलने के बाद बिहार के लेनिन कहे जाने वाले नेता जगदेव प्रसाद ने बाद में 'शोषित समाज दल' का गठन किया

तो दो नारे दिये जो काफी मशहूर हुये थे। एक, 'सौ में नब्बे शोषित हैं नब्बे भाग हमारा है' और दूसरा, 'अबकी बारी भादो में, गोरी कलाई कादो में' था। जगदेव प्रसाद बिहार के दलित-पिछड़ों के बीच सबसे फायरब्रांड नेता कहे जा सकते हैं जिनकी नृशंस हत्या ब्राह्मणवादी भूमिहार सामंती समाज के लोगों ने पुलिस-प्रशासन के मिलीभगत से करवा दी।

ये भी दिलचस्प है कि जेपी ने कालांतर में श्रीकृष्ण सिंह पर शासन करने के दौरान खुल्लमखुल्ला 'भूमिहारवाद' करने का आरोप लगाया था। उस समय के दलित-पिछड़े समाजवादी बताते हैं कि सत्ता, शासन, प्रशासन में श्रीकृष्ण सिंह के काल में सवर्ण भूमिहारों की ठसक ऐसी स्थापित हुई है कि इसका सामाजिक-राजनीतिक असर अब भी दिखता है। यही नहीं आजादी के बाद बिहार में जो सरकारें शुरू के दो-ढ़ाई दशकों तक शासन में रहीं उन्होंने अपने समय की तमाम नियुक्तियों में जमकर जातिवाद किया जिसका प्रभाव राज्य सचिवालय से लेकर कमीश्नरी, जिला, प्रखंड, पंचायत, पुलिस विभाग और थानों तक स्पष्ट तौर से आज भी दिखाई देता है। हालांकि इस तरह की जातिवादी सत्ता की सामाजिक प्रतिरोधी प्रतिक्रिया भी ऐसी हुई की श्रीकृष्ण सिंह के बाद फिर दुबारा कोई मुख्यमंत्री की कुर्सी पर काबिज नहीं हो पाया। अब समय के साथ किसी की राज्य में शासक नेता और सरकार के लिये यह नियुक्ति में जातिवाद का सिद्धांत अब शुरूआती दौर की तरह जिंदा नहीं है क्योंकि अब नियुक्ति के तरीके बदले हैं, इनमें पारदर्शिता की वजह से अंदर-बाहर अगर पक्षपात है तो दिखने भी लगा है। वैसे जिस जाति का मुख्यमंत्री बनता है तो उसपर जातिवाद करने के आरोप अमूमन समाज में दूसरी जातियों के बीच प्रचलित है। यह भी कहा जाता है कि जेपी ने श्रीकृष्ण सिंह के भूमिवारवाद' की पोल खोली तो पीछे एक बड़ा कारण उनका 'कायस्थवाद' था जिसके तहत वे अपने स्वजातीय नेता के.बी. सहाय को बिहार की राजनीति में उत्तराधिकारी बनाने के लिये बेचैन थे। वैसे जेपी सामाजिक न्याय और दलित-पिछड़ों की भागीदारी के मुद्दे पर कभी मुखर नहीं रहे और पिछड़ों के एक नेता ने तो उन्हे सार्वजनिक तौर पर 'द्विजों का दलाल' तक कह डाला था। बिहार की मनुवादी-ब्राह्मणवादी व्यवस्था और उस पर सामाजिक-राजनीतिक नायकों के द्वारा परदेदारी की तमाम कोशिशों के बीच बहुजन राजनीति के संदर्भ को समझने के लिये यह तमाम बातें महत्वपूर्ण हैं।

बिहार का सवर्ण काल

ठीक इसी कालखंड में जमीन्दारी उन्मूलन से भूदान और भूमि सुधार को लेकर सत्ता-प्रशासन की नाकामी के बीच जमीनी धरातल नक्सलवाद की आग में झुलसने लगा था। जातिवादी प्रशासन की पक्षपातपूर्ण नाकामी या विद्वेषपूर्ण कोताही के कारण जब वंचित-शोषित समाज के मान-सम्मान, हक-हकूक का सवाल उठा और उनकी

आवाज सत्ता प्रतिष्ठान तक जाने एवं समाधान तलाशने में नाकाम हुई तो प्रतिरोध की राह पर लोगों ने हथियार उठाया, नक्सलवाद को भी अपनाया। उधर सवर्ण सामंती समाज तमाम हथकंडों से अपनी जमीन बचाये रखने में सफल हुआ लेकिन कामगार-मजदूर अब बागी तेवर वाले थे जिसके कारण समाज द्वंद्व की राह पर चल पड़ा। तब मनुवादी-ब्राह्मणवादी सवर्णों ने सेना और पुलिस की तर्ज पर अपने प्राइवेट हथियारबंद सेना तक बना ली जिसका मुख्य मकसद था दलित-पिछड़े-पसमांदा समाज का चौतरफा दमन। इस काम में जाहिर तौर पर लोकतंत्र के सभी स्तंभों-विधायिका, प्रशासन, न्यायालय, पुलिस, मीडिया और धार्मिक सत्ता केन्द्रों में बैठे उच्च जाति के लोगों का सहयोग-समर्थन इन सवर्ण सेनाओं को मिलता रहा। इन सेनाओं में सबसे चर्चित रणवीर सेना का इतिहास बिहार की राजनीतिक पृष्ठभूमि के लिहाज से समझना जरूरी है जो तीन दशकों तक सक्रिय तौर पर मौजूदगी का एहसास कराती रही है। बिहार की भूमि आधारित अर्थव्यवस्था में जाति की एक बड़ी भूमिका रही है। 10 फीसदी से भी कम संभ्रांत जाति समूह जमीन के बड़े हिस्से का मालिक रहा तो 90 फीसदी दलित-पिछड़ा-पसमांदा लोगों का एक बड़ा भाग मालिकों की जमीन पर चाकरी कर जीवन यापन करता रहा है। फिर सवर्ण सामंतों ने इस व्यवस्था में शोषण और ऐशो-आराम की भी पूरी गुंजाइश राजशाही अंदाज में निकाल ली थी। बिहार में सामंती गठजोड़ के खिलाफ दलित-पिछड़ी जातियों ने गोलबंदी शुरू की तो मान-सम्मान, हक-हकूक और भागीदारी का मुद्दा प्रमुखता से सामने आया जिससे सामाजिक द्वंद पैदा हुआ। एक ओर बड़ी आबादी की बुलंद ख्वाहिशों की उड़ान को लेकर जिंदा होते जज्बात थे तो दूसरी तरफ संभ्रांत सवर्ण जमात की इतिहास के कब्र पर बने गढ़ों और मठों को बचाने की कोशिश थी। इसी पृष्ठभूमि में सामंती वर्चस्ववादी दबदबे को बचाने के लिये बनी रणवीर सेना कहने के लिये सभी सवर्ण किसानों की सेना थी लेकिन हकीकत में ये सिर्फ भूमिहार जाति की दबंग गुंडों का संगठन रही। रणवीर सेना का नामकरण भी कम दिलचस्प नहीं जो एक राजपूत विरोधी भूमिहार जाति के नायक के नाम पर हुआ है। इस संगठन का नाम 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुर्खियों में उभरे रिटायर्ड आर्मीमैन रणवीर चौधरी उर्फ रणवीर बाबा के नाम पर रखा गया। प्रचलित किस्सागोई के अनुसार रणवीर चौधरी ने ही भोजपुर के इलाके में राजपूत भूमिपतियों का रूतबे और वर्चस्व खत्म कर भूमिहारों के वजूद की स्थापना की थी। इस संगठन को कई दलों और उसके नेताओं का राजनीतिक संरक्षण प्राप्त था।

बिहार में नरसंहारों की शुरूआत 70 के दशक में ही हो चुकी थी जिसमें बेलछी नरसंहार राष्ट्रीय सुर्खियों में छाया और इंदिरा गाँधी तक सुदूर ग्रामीण इलाके में हाथी पर बैठ कर पहुँची थीं। रणवीर सेना की हथियारबंद दबंगई का अंदाजा इसी से लगा सकते हैं कि 1994 में संगठन के उदय के बाद कुल 37 नरसंहार हुये जिसमें से 30 इसी के नाम दर्ज है। 1995 से 2000 की अवधि में हुये 37 नरसंहारों में 370

लोगों का कत्ल हुआ जिसमें से लगभग 300 लोगों की नृशंस हत्या रणवीर सेना ने की है। ब्रह्मेश्वर सिंह के नेतृत्व में जो बड़े नरसंहार हुये उनमें बथानी टोला में 21, हैबसपुर में 10, एकबारी में 9, चरपोखरी में 10, लक्ष्मणपुर-बाथे में 62, शंकरबिगहा में 23, नारायणपुर-मखदुमपुर में 12, सिंदानी-बेलागंज में 12 और मियाँपुर में 33 लोगों का सामूहिक कत्ल किया गया। लक्ष्मणपुर बाथे हत्याकांड के वक्त भूमिगत ब्रह्मेश्वर का एक बयान काफी सुर्खियों में रहा कि 'हम महिलाओं को इसलिये मारते हैं कि वो नक्सली पैदा करती हैं। बच्चों को इसलिये मारते हैं कि वो बड़े होकर नक्सली बनेंगें और हमारे खिलाफ बंदूक उठायेंगे।' जेल में बंद रणवीर सेना के गुर्गों के अनुसार सुप्रीमो का सीधा निर्देश होता था कि 'महिला-बच्चा-बूढ़ा देखने की जरूरत नहीं है, जो मिलता जाये उसे मारते जाना जरूरी है। हत्या तो करते ही थे मौका मिलने पर बलात्कार की भी छूट होती थी।' अपने शासन काल के दौरान स्पीडी ट्रायल के नाम पर बिहार के बड़े अपराधियों को सजा दिलाकर जेल में डलवाने का दावा करने वाली नीतीश सरकार के कार्यकाल में किसी भी नरसंहार के आरोपों में सजा नहीं हो पाई। दलित-पिछड़ों को न्याय तो नहीं मिला, इसके आरोपी सत्ता प्रतिष्ठान से जुड़े लोगों के संरक्षण का लाभ भी उठाते रहे। इसमें सीधे तौर पर नीतीश कुमार पर ऊँगली उठाना ठीक नहीं क्योंकि बीजेपी और सत्ता केन्द्र यथा न्यायपालिका, ब्यूरोक्रेसी, पुलिस महकमें से जुड़े सवर्णों का गठजोड़ दबाव बनाकर इस काम को अंजाम देने के लिये काफी रहा है।

मंडल का जोर और लालू का जादू

सन् 1990 में लालू यादव के सत्ता संभालने के बाद बिहार एक नये दौर में प्रवेश कर चुका था। मंडल, कमंडल, आर्थिक उदारीकरण के सवालों के बीच लालू प्रसाद जब मुख्यमंत्री बने तो एक नई तरह की राजनीति की शुरूआत उन्होंने की। हजारों सालों की मानसिक गुलामी और आजादी के बाद बिहार में सवर्णों जातियों के प्रशासनिक दबदबा व धमक के कारण हाशिये पर खड़े दलित-पिछड़ा-अल्पसंख्यक समाज को एक गजब तरह की सामाजिक-मनौवैज्ञानिक प्रेरणा व उत्साह का ऐहसास होने लगा। लालू अनायास ही अपने प्रशासनिक अमले के साथ दलितों-पिछड़ों-अल्पसंख्यक समाज के लोगों के बीच, उनकी बस्तियों में पहुँच जाते संवाद करते। यही नहीं कभी पानी के टैंकर ले जाते वंचित बच्चों को साबुन से नहलवाते और इस काम में स्थानीय प्रशासन को भी लगा देते थे। मंचों से लालू नशा न करने का संदेश देते, भीड़ से किसी नशेड़ी को भाँप कर मंच पर बुलाते और नशा न करने की कसम खिलाते, भेड़-बकरी-गाय चराने वालों को पढ़ने-लिखने का संदेश देते थे। किसी के घर खा लेते, किसी को कुछ खिला देते, कभी किसी जरूरतमंद को आवास पर बुलाकर बात करते तो कभी पुलिस-प्रशासन के अफसरों को पीड़ित के पास भिजवाकर मदद करवाते।

कई बार मदद के लिये मिलने गये जरूरतमंद को विधानसभा, लोकसभा का टिकट भी थमा देते या फिर विधान परिषद् और राज्यसभा में भेज देते। सत्ता संभालने के बाद लालू बिहार के 85 फीसदी जनता के दिलों पर छा गये तो मंडल कमीशन की घोषणा ने बहुजन नेता के तौर पर उनके कद को चरम पर पहुँचा दिया। इसी बीच बीजेपी ने मंडल कमीशन को धराशाई करने के लिये राम मंदिर आंदोलन के अपने सांप्रदायिक एजेंडे को बढ़ाते हुये जब भगवाधारी लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में सोमनाथ से अयोध्या तक रथ-यात्रा निकाला तो बिहार में लालू यादव ने जिस तरह से आडवाणी को गिरफ्तार करने का साहस दिखाया वह काबिले-तारीफ है। इस दौर में लालू ने अपनी बखूबी प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया। जहाँ कहीं भी धार्मिक उन्माद की खबर मिलती लालू खुद कैम्प करते, उक्त क्षेत्र में मार्च करते और प्रशासन की कमान सँभाल लेते। इससे लालू यादव की धर्मनिरपेक्ष छवि भी काफी निखर कर सामने आई। इस दौर में सामाजिक न्याय के साथ धर्मनिरपेक्ष नेता के तौर पर लालू के बढ़े कद ने धीरे-धीरे दो ब्राह्मणवादी दलों-कांग्रेस और वामपंथी दलों– के वजूद को बिहार की राजनीति के कब्र में पहुँचा दिया था। लालू यादव का यह पॉलिटिकल ट्रेंड ब्रेक करने वाला स्टाईल अबतक चले आ रहे सवर्ण राजनीति की शास्त्रीय परिभाषा के बिल्कुल ही विपरीत था जिसने उन्हें बिहार के बहुजन जननेता के तौर पर स्थापित तो किया ही, देश-विदेशों में भी खासकर दुनिया के मुस्लिम बहुल देशों में सेक्युलर नेता के तौर पर लोकप्रिय बना दिया।

दलित-पिछड़े-अल्पसंख्यक समाज की गोलबंदी के साथ लालू यादव का कद बढ़ता जा रहा था तो दूसरी तरफ मनुवादी विचार के पोषक सवर्ण समाज की गोलबंदी भी तेज हो रही थी। पहले कार्यकाल के पूरा होने के पहले ही 'चारा घोटाले' में लालू यादव का नाम शामिल किया गया और अपराधी के तौर पर देश में उनकी छवि गढ़ने की कवायद भी शुरू हुई। दिलचस्प ये है कि पशुपालन विभाग के अंतर्गत चारा घोटाले की शुरूआत 1970 के दशक में ही हो चुकी थी जिसमें कई मंत्री, अफसर, माफिया, सरगनाओं की बड़ी पैठ हो चुकी थी। लेकिन दो दशक पहले से चले आ रहे घोटाले में सभी ने मिलकर लालू को बलि का बकरा बना दिया। लालू सरकार के निर्देश पर ही जब इस घोटाले पर जाँच हुई तो महज उनके 3-4 सालों के कार्यकाल को आधार बनाकर सारा ठीकरा उनपर फोड़ दिया गया। देश-दुनिया में लालू यादव को विलेन की तरह प्रचारित किया गया। मीडिया की भूमिका लालू यादव के मामले में घोर सवर्णवादी और जातिवादी रही है। जब लालू जेल गये तो अचानक अपनी पत्नी राबड़ी देवी को उन्होंने मुख्यमंत्री बना दिया। इसका मीडिया में मजाक बनाया गया, मसखरेबाजी की गई लेकिन लालू ने खुद को खत्म करने की साजिश को बड़ी चालाकी से झेल लिया। इस दौर में प्राइवेट टेलीविजन चैनलों का दौर शुरू हो चुका था और इन मीडिया समूहों की घोर जातिवादी मानसिकता का पता इसी से लगाया

जा सकता है कि एक प्रोमो अथवा प्रचार में पुरूष शौचालय और स्त्री शौचालय को क्रमशः लालू और राबड़ी के तौर पर दिखाया जाने लगा था। लालू यादव के जेल जाने के बाद के दौर में बिहार की कानून-व्यवस्था का मुद्दा जनता के बीच एक सवाल बना जो लाजिमी भी था। लेकिन पुलिस व्यवस्था और शासन-प्रशासन की चुनौतियों के बीच जिस तरह से ब्राह्मणवादी सूचना तंत्रों के माध्यम से 'जंगलराज' का प्रोपोगंडा देश-विदेश भर में फैलाकर सामाजिक न्याय-धर्मनिरपेक्षता की राजनीति को खत्म करने की कोशिश की गई उसका विश्लेषण अभी भी बाकी है।

1990 के बाद अति-पिछड़ों के कई नेता बिहार की राजनीति के फलक पर उभरे उनमें अधिकांश लालू यादव के मुख्यमंत्रित्व काल की राजनीति के प्रोडक्ट रहे हैं और कुछ पुराने इस दौरान नेतृत्व के स्तर पर भी उभर कर आये। अति-पिछड़ा समाज के नेताओं में पहली बार 1992 में प्रो.रामदेव भंडारी और 1994 में जगदंबी मंडल को राज्यसभा भेजा गया और 1996 में कैप्टन जयनारायण निषाद केन्द्र में मंत्री बनाये गये। वहीं जब 1995-96 में बिहार विधान परिषद् की 7 सीटें खाली हुई तो उसमें से 5 अति-पिछड़ों को लालू यादव ने नॉमिनेट कर दिया। इससे पहले कर्पूरी ठाकुर ने आरक्षण में अति-पिछड़ों के लिये 12 प्रतिशत अलग से व्यवस्था की थी।

बिहार की राजनीति का बदलता समाजशास्त्र

बिहार की राजनीति में प्रथम तीन चुनावों-1952, 1957, 1962 में सामाजिक बुनावट के लिहाज से लगभग 55 से 60 प्रतिशत विधायक उच्च जाति के जीत कर आये थे और बाकी 40 से 45 प्रतिशत में दलित-आदिवासी-पिछड़े-मुसलमान विधायक जीतते थे। एससी-एसटी सीट रिजर्व होने के कारण इन जातियों के प्रतिनिधित्व में स्थायी भाव हमेशा बना रहा। 1967 के चुनाव में पिछड़ों की राजनीति का उभार हुआ तो विधानसभा की सामाजिक संरचना में कुछ बदलाव आया जो 1985 तक कमोबेश एक समान बना रहा। 1967 से 85 के दौरान पिछड़े विधायकों की संख्या लगभग 25 से 30 प्रतिशत के बीच थी तो सवर्ण विधायकों की संख्या थोड़ी गिरावट के बावजूद 40 से 45 प्रतिशत के आसपास थी। 1990 के विधानसभा चुनाव में सामाजिक परिवर्तन की लहर चली तो पहली बार पिछड़े विधायकों की संख्या सवर्ण विधायकों की संख्या से ज्यादा हो गई जो अबतक बरकरार है। पिछड़े वर्ग के 117 विधायक इस चुनाव में जीते जबकि सवर्ण विधायकों की संख्या 105 थी। लेकिन जब 1995 का विधानसभा चुनाव हुआ तो पासा पूरी तरह पलट चुका था। इस बार पिछड़े विधायकों की संख्या 161 पहुँच गई जबकि सवर्ण विधायकों की संख्या सिर्फ 56 रह गई। 2000 के चुनाव में 121 पिछड़े विधायक चुने गये। फिर 2005 के दो चुनावों-फरवरी व नवम्बर के बाद भी आंकड़ा कमोबेश 114 पिछड़े विधायक के मुकाबले सवर्ण विधायक 60 थे लेकिन इस बार कमान नीतीश कुमार के हाथों में

आ चुकी थी। 2010 में जब चुनाव हुये तो बीजेपी-जेडीयू गठबंधन में सवर्ण विधायकों की संख्या में इजाफा हुआ जो 1990 के बाद सबसे ज्यादा यानि 70 के उपर था। लेकिन 2015 में जब आरजेडी-जेडीयू गठबंधन हुआ तो 1990 के बाद का सबसे बड़ा दलित-पिछड़ा जनउभार साबित हुआ जिसमें लगभग सिर्फ 20 प्रतिशत यानि 50 सवर्ण विधायक जीते जो अबतक की सबसे कम संख्या थी। वहीं 2015 में पहली बार पिछड़े विधायकों की संख्या कुल विधायकों के आधे से भी उपर चला गया जब लगभग 54 प्रतिशत यानि 130 विधायक चुने गये। इस चुनाव में 39 दलित, 2 आदिवासी विधायक जीते तो बड़ी जीत 24 मुस्लिम विधायकों को भी हासिल हुई। इन आंकड़ों से समझा जा सकता है कि 2015 का बिहार विधान सभा चुनाव कितना ऐतिहासिक चुनाव माना जा सकता है जिसने मंडल राजनीति के बाद हुये बहुजन उभार को भी ध्वस्त कर दिया। बिहार के विधान सभा की यह बदली हुई सामाजिक संरचना को देखकर समझा जा सकता है कि यह लालू-नीतीश के लिये कितनी महान जीत है। वहीं बीजेपी के नेतृत्व वाली एनडीए के लिये कितनी शर्मनाक हार है जिसने महज डेढ़ साल पहले बिहार में सभी दलों का सूपड़ा साफ कर दिया था।

विधानसभा की जातीय संरचना से साफ है कि बिहार की राजनीति बहुजन प्रतिनिधित्व के लिहाज से अब स्थायी भाव में आ चुकी है। बिहार में दलित राजनीति का पिछड़ा राजनीति के साथ अभी तक चलते रहना भी एक खास समाजशास्त्रीय पहलू की ओर इंगित करता है। इसका एक कारण है, सवर्ण-सामंती व्यवस्था का घोर जातिवादी होना जिसने जमीनी धरातल पर 1990 के पहले दलित-पिछड़ों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में बहुत फर्क पैदा होने की गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। हालांकि मनोवैज्ञानिक तौर पर कई जातियों की आबादी में बड़े अंतर के कारण से यह फर्क प्रतीत होता है और कराया भी जाता है इसलिये जब भी जरूरत पड़ी राजनीतिक तौर पर ये सवर्णों के खिलाफ आसानी से गोलबंद हो गये। दूसरा कारण है कि, दलित नेताओं का बहुजनवाद की वैचारिक धारा का सामूहिक नेतृत्व प्रदान करने का हौसला या तेवर न दिखाना और जो राजनीति में उभर कर आये वो या तो सवर्णों की शागिर्दी-सरपरस्ती में राजनीति करने लगे या सवर्णपरस्ती के शिकार हो गये। हालांकि बिहार में रामसुंदर दास और उनसे पहले भोला पासवान शास्त्री जैसे आदर्शवादी दलित नेता मुख्यमंत्री भी हुये तो जगजीवन राम जी राष्ट्रीय राजनीति के बड़े कद के नेता हुये जो प्रधानमंत्री पद के दावेदार तक माने गये लेकिन ये सभी बिहार की जमीनी धरातल पर नेतृत्व की क्रांतिकारी मिसाल पैदा करने में नाकाम रहे या फिर कोशिश नहीं की। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश की तरह बिहार में दलित राजनीतिक नेतृत्व एक अलग बड़ा पहचान बनाने में सफल नहीं है बल्कि व्यक्तिगत नेताओं ने जरूर राष्ट्रीय स्तर पर बड़ी सुर्खियाँ बटोरी हैं। मंडल के उतरार्द्ध काल में बहुजन यानि दलित-पिछड़ा राजनीति की एक अलग समझ समाज में विकसित

हुई, विमर्श का फलक बड़ा हुआ। बाबा साहब अम्बेडकर जी को ही नहीं महात्मा फुले, सावित्री बाई, शाहूजी, पेरियार जैसे शख्सियतों को लेकर बहुजन शिद्दत से महसूस करने लगे। इन सब बातों ने बहुजन राजनीति की समझ, विमर्श और द्वंद्व को ज्यादा धारदार और विस्तृत बनाया। अब इस दौर में जब कांशीराम जी का राजनीतिक उदय हुआ तो उन्होंने उत्तर प्रदेश की राजनीति ही नहीं देश की राजनीति पर बड़ा फर्क डाला है। लेकिन इसी कालखंड में बिहार में उम्र और अनुभव के लिहाज से लालू-नीतीश से भी वरिष्ठ रामविलास पासवान के कद का दलित नेता शायद ही कोई था। लेकिन हार्डकोर दलित-बहुजन पॉलिटिक्स करने की बजाय समय के साथ सवर्ण समाज के दबंगों-अपराधियों से गोलबंदी कर राजनीति के वैचारिक वजूद व फलक छोटा कर दिया।

लालू प्रसाद और नीतीश कुमार के बाद पिछड़ों में कुशवाहा समाज और अति-पिछड़ों के बीच भी एक बड़ी ख्वाहिशें उफान मार रही हैं लेकिन बड़े हौसले का इजहार फिलहाल कोई कर नहीं पा रहा है। कुशवाहा समाज के नेताओं में शहीद जगदेव प्रसाद के बेटे नागमणि ने तो चाल-चरित्र-चेहरे से न सिर्फ एक विरासत को खो दिया बल्कि जनता की नजर में राजनीति के लिये अपने पिता की हत्या के साजिशकर्ताओं से समझौता भी कर लिया बताते हैं। इसी समाज के उपेन्द्र कुशवाहा ने बिहार के भविष्य के नेता के तौर पर हौसला दिखाया और 2014 लोकसभा चुनाव के पूर्व एनडीए गठबंधन में आकर सफलता अर्जित की, यही नहीं पूरे बिहार में कुशवाहा समाज का वोट एनडीए को दिलाने में भी भूमिका अदा की। पर, 2015 के बिहार विधानसभा चुनाव आते-आते अपनी हैसियत बिहार एनडीए गठबंधन में जीतनराम माँझी से भी छोटी कर ली और जुबानी तौर पर बीजेपी के अप्रत्यक्ष नरम प्रवक्ता बन गये। इतना होना था कि त्रिवेणी संघ, अर्जक आंदोलन और ब्राह्मणवाद विरोधी मुहिम की बिहार में अग्रणी जाति रही खुद्दार कुशवाहा समाज ने उपेन्द्र कुशवाहा को छोड़ महागठबंधन के सामाजिक न्याय की धारा के साथ चलने में गुरेज नहीं किया। अति-पिछड़ों में चंद्रवंशी, निषाद, धानुक आदि कुछ जातियाँ भी प्रमुखता से बिहार की राजनीतिक फलक पर कुलांचे मार रही हैं। सांप्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता के खेल में दबी कुचली मुसलमानों की पसमांदा जातियाँ भी मुखर तौर अपने को सामाजिक न्याय की धारा से जोड़ने की ख्वाहिशमंद हैं पर कुशवाहा और अति-पिछड़ों की तरह मुस्लिम पसमांदा जाति समूह को भी एक अदद खुद्दार और बड़े हौसले व कलेवर वाले नेता की तलाश पूरे चुनाव में दिखी और आगे भी रहेगी। इस लिहाज से इन तमाम जातियों और उनके नेताओं पर भविष्य में राजनीतिकों की नजर होंगी। लेकिन इन सभी जाति समूहों ने अपने समाज के नेताओं में भविष्य न देखकर ही 2015 के बिहार चुनाव में महागठबंधन का साथ दिया या यूँ कहें कि मंडल राजनीति के साझेदार बने।

Continue Your Reading Journey

This preview has ended. Access the complete library and support our mission.

Join Our Inclusive Reading Community

✓ We champion diverse voices and perspectives
✓ Your support helps amplify underrepresented authors
✓ We provide free access to educational institutions
✓ Building bridges through shared stories
✓ Creating space for all narratives to be heard

Support Our Mission

Your donation enables us to:

• Curate diverse book collections
• Support authors from marginalized communities
• Provide free resources to educators
• Maintain our accessible digital library

Visit: www.diversitymission.in

Sign the diversity pledge • Make a donation • Download full library